कार्तिक कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक १२-१२-१९७४, श्लोक-१, प्रवचन-२

पहला श्लोक। सिद्ध को नमस्कार करते हैं। कल चला है। आज फिर से लेते हैं। जिसे आत्मा आत्मारूप से ज्ञात हुआ है। पहला यह भेदज्ञान बताते हैं। सिद्ध को आत्मा आत्मारूप से ज्ञात हुआ है। शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वरूप आत्मा को यह ज्ञानस्वरूप से ज्ञात हुआ है और '**अपरं परत्वेन एव**' **पर पररूप से ही जाना गया है,...** यह पहले मोक्ष का उपाय बताया। समझ में आया? स्वस्वरूप चैतन्य आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसे स्वरूप से जानना अर्थात् कि वस्तु के स्वभाव से वह वस्तु अभिन्न है। और परवस्तु परवस्तु के स्वभाव से अभिन्न है, स्व से भिन्न है, ऐसा पहले जिसने जाना, कहते हैं, यह पहला भेदज्ञान कहा। यह मोक्ष का उपाय कहा। स्वयं अपना स्वरूप जैसा है, वैसा चैतन्यस्वभाव में ज्ञान की पर्याय में लक्ष्य में लेकर स्वसन्मुख से एकत्व, पर से भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न और पर से भिन्न। वह परवस्तु मैं नहीं। **पर पररूप से ही जाना गया है,...** आहाहा! दया, दान और रागादि का विकल्प है, वह परवस्तु है। उसे यहाँ परवस्तु कहा। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह भी एक विकल्प है, वह परवस्तु है। पर को पररूप से जाना, स्व को स्वरूप से जाना, ऐसे सिद्धात्मा। परन्तु ऐसा कहकर मोक्ष का उपाय भी साथ में कहा।

मुमुक्षु : मोक्ष उपाय और मोक्ष दोनों कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में कहेंगे अब मोक्ष तो।

उस... उस। मोक्ष उपाय यह कहा। अब '**अक्षयानन्तबोधाय**' **अविनाशी अनन्त ज्ञानस्वरूप....** पर्याय में-अवस्था में अविनाशी अक्षय, जिसकी ज्ञानदशा अक्षय हुई। आहाहा! और जो अनन्त ज्ञानस्वरूप। अक्षय तो है परन्तु स्वरूप जिसका—ज्ञान का अनन्त है। वह मोक्षस्वरूप कहा, वह सिद्धस्वरूप कहा। ऐसे **सिद्धात्मा को....** इस प्रकार पहिचानकर मैं सिद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है विकल्प सिद्धात्मा को नमस्कार करना वह। परन्तु अन्तर में स्वसंवेदन में आकर नमस्कार हो जीव को, वह भावनमस्कार है। अपने स्वभाव की परिपूर्णता की ओर ढल

गया, नम गया, उसका विनय हो गया, इसका नाम अन्तर स्वंसेवदनभाव नमस्कार है। आहाहा! विकल्प उठा है, उस जाति का, वह द्रव्यनमस्कार कहा जाता है। परन्तु उसमें दो बातें एक गाथा में बतायी है। सिद्धरूप से हुए, वे किस प्रकार हुए? कि स्व-पर के भेदज्ञान द्वारा हुए। यह उपाय कहा। आहाहा! समझ में आया? जिसे सिद्धपद प्राप्त करना है, उसे किस उपाय से होता है? कि स्व-पर की भिन्नता के भान से होता है। आहाहा! सवेरे की अपेक्षा अभी बहुत स्थूल आता है, सवेरे जैसे सूक्ष्म नहीं है। समझ में आया?

अपने पूर्ण स्वरूप का भान और उसमें रागादि अजीव पररूप है, वह इसमें नहीं—ऐसा दोनों प्रकार का ज्ञान उसे होना चाहिए। एक तो स्व स्वरूप का और पर अशुद्धता पर्याय में है, उसका इसे ज्ञान होना चाहिए। यह स्व-पर का ज्ञान। त्रिकाली शुद्धस्वरूप है, उसका ज्ञान और पर्याय में अशुद्धता है, उसका भी ज्ञान। दो प्रकार यह अर्थ में कहेंगे। पहले अपना स्वभाव शुद्ध है, ऐसी दृष्टि में अभिन्नता स्वभाव के साथ करके स्व को जाना। तब उसकी पर्याय में अशुद्धता है, व्यवहार है। निश्चय से उसकी पर्याय में अशुद्धता है। परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से उस अशुद्धता को व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

है तो इसका निश्चय अशुद्धता संसारदशा। जिस प्रकार का राग उत्पन्न होता है, है वह अशुद्धदशा। है वह अपनी पर्याय में निश्चय से अस्तित्व है। पर में है और अपने में नहीं, ऐसा नहीं है। इन दो का ज्ञान होने पर—द्रव्य का इस प्रकार से और पर्याय का इस प्रकार से.... आहाहा! समझ में आया? यह ज्ञान होने पर उसे मोक्ष के उपाय का भी भान हुआ और उसके फलरूप से अनन्त ज्ञान जिसे प्राप्त हुआ, ऐसी मुक्तदशा का भी उसे भान हुआ। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त में.... यह महामुनि थे न... आहाहा! लब्धि बहुत, चमत्कार बहुत, पुण्य का चमत्कार भी बहुत था, ऐसा शास्त्र में लिखते हैं। पवित्रता की तो बात क्या करना! आत्मा के आनन्द में लीन... लीन थे। लब्धि भी बहुत थी। पहले में लिखा हुआ है। भगवान के पास गये थे। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य गये थे; वैसे ये भी, साक्षात् भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे। ऐसी इन्हें लब्धि थी। आहाहा! वे स्वयं

यह शास्त्र रचते हैं। निमित्त से तो ऐसा कहा जाता है न। रचना में तो उसका निमित्त है। रचती है शास्त्र की भाषा जड़ से। आहाहा! परन्तु जब कथन कहना हो, तब ऐसा चले न!

मुमुक्षु : बोलने की पद्धति।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलने की पद्धति ऐसी होती है।

पूज्यपादस्वामी, जिनके पाद अर्थात् पैर इन्द्र पूजते थे। कहो, यह पंचम काल के साधु। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य के बाद में हुए। तथापि जिन्हें देव पूजते थे। जंगल में ध्यान में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त थे। उसे मुनिपना कहते हैं। समझ में आया? उन्हें पंच महाव्रत आदि के विकल्प हों, परन्तु वह तो अशुद्ध है, विकार है, पर है—ऐसा उन्हें ज्ञान में था। समझ में आया? वे आचार्य कहते हैं कि मैं सिद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ। निश्चय से तो जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही यहाँ आत्मा है। यहाँ पर्याय में अन्तर है, वह बात अलग रखो। परन्तु जैसे सिद्ध भगवान को अनन्त गुण हैं और उनकी पर्याय निर्मल अनन्त हुई है, यहाँ पर्याय भले अनन्त निर्मल न हो, परन्तु वस्तु जो है, वह तो सिद्ध समान अनन्त गुणों से निर्मल पूर्णानन्दस्वरूप जीव का है, वह सिद्ध ही है। उसे यहाँ भाव से नमस्कार किया है। द्रव्य से सिद्ध भगवान को भी नमस्कार किया है।

टीका - यहाँ पूर्वार्ध से मोक्ष का उपाय.... पहले दो पद में मोक्ष का उपाय। आहाहा! बापू! यह तो अन्दर की बातें हैं। आहाहा! **और उत्तरार्ध से मोक्ष का स्वरूप दर्शाया गया है।** दूसरे दो पद में मोक्ष बताया है। **सिद्धात्मा को, अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी को**- सिद्ध आत्मा को अर्थात् सिद्ध परमेश्वर को। आहाहा! प्रवचनसार में कहते हैं न? मेरी दीक्षा में मैं सिद्धों को और अरिहन्तों को साक्षीरूप से रखता हूँ। आहाहा! मेरी जो चारित्रदशा शुद्धोपयोगरूपी रमणता, ऐसी चारित्र की दीक्षा का महोत्सव... क्या कहलाता है यह? स्वयंवर.... स्वयंवर। आहाहा! मैं स्वयं मेरी निर्मल पर्याय को वरता हूँ। आहाहा! वह मेरा स्वयंवर है।

मैं आत्मा में पूर्णानन्द और पूर्ण वीतरागता जो पड़ी है, उसमें से मैंने पूर्ण आनन्द

का साधन ऐसा जो चारित्र दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा, वह मेरे स्वयंवर मण्डप की इस महोत्सव की दशा है। आहाहा! मैं स्वयं अपने इन दर्शन-ज्ञान और आनन्द की दशा को मैंने वरण किया है, मैंने प्रसन्न करके उसे मैंने वरण किया है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसमें साक्षी अरिहन्तों और सिद्धों को रखा है। यहाँ साक्षी में नमस्कार सिद्धों को करते हैं। समझ में आया?

बड़ा विवाह हो तो उसमें गृहस्थ को साथ में ले जाते हैं। गृहस्थ नवनीतभाई जैसे हों, भगवानदास सेठ जैसे हों, पोपटभाई जैसे हों तो साथ में ले जाते हैं। साधारण व्यक्ति हो और परिचित हो। उसकी कन्या जो समय हो, वह न बदले उसे। कदाचित् उसका पिता समय में चूका हो कि इतने पैसे दो चुपचाप, फिर कन्या आयेगी। आहाहा! देर लगी एक सेकेण्ड की तो वह सेठ बैठा हो, सुने। कैसे हुआ? कि अन्दर कुछ गड़बड़ है। समय वर्ते सावधान। ऐसा आता है न?

मुमुक्षु : ब्राह्मण बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्राह्मण बोले परन्तु यहाँ समय वर्ते—उसका समय है वहाँ सावधान। आहाहा! अपना काल है आनन्द की दशा का, उसमें सावधान। वहाँ उसे विवाह का काल है। वह बड़े पुरुष वहाँ जाये अन्दर। देरी क्यों लगी? पचास हजार रुपये पहले रखो। अभी तो कुछ नहीं। नहीं थी न लेने-देने की बात कुछ? चाहे जो हो, परन्तु अभी ऐसा है। स्वरूपचन्दभाई! वह गले में से हार उतारकर कहे, ले यह, कर टाईमसर, साथ में मैं और कन्या फिरे, तीन काल में नहीं।

इसी प्रकार कहते हैं कि प्रभु! मेरी चारित्र की दशा की दीक्षा में प्रभु! आपकी साक्षी और आपकी उपस्थिति मैंने तो की है। आहाहा! वह मेरी दशा अब नहीं फिरेगी। आहाहा! मैंने सर्वज्ञ परमात्मा सिद्धों को साक्षी में रखा है। यह कहेंगे यहाँ, देखो! **सिद्ध, अर्थात् सर्व कर्मों से सम्पूर्णपने....** सर्व कर्म से सम्पूर्णरूप से **(अत्यन्त) मुक्त — ऐसे आत्मा को नमस्कार हो।** आहा! यह भाषा की बात नहीं है, हों! यहाँ भाव की बात है।

जिन्होंने क्या किया? सिद्ध परमात्माओं ने क्या किया? **जाना।** क्या किया

उन्होंने ? भेदज्ञान पहले पद में बताया। जाना। **किसको ? आत्मा को।** आहाहा! भगवान आत्मा जो पर्याय की अंशबुद्धि में जो था, उसे द्रव्यबुद्धि में आकर उन्होंने द्रव्य को जाना। आहाहा! मैं एक पूर्णानन्द परमात्मस्वरूप हूँ, ऐसा उन्होंने जाना। **किस प्रकार (जाना) ? आत्मारूप से ही।** आत्मा को आत्मारूप से जाना। वह रागरूप नहीं, पुण्यरूप नहीं, गतिरूप नहीं। समझ में आया ? आहाहा! उसे आत्मारूप से (जाना)।

तात्पर्य यह है कि जिन सिद्धात्माओं ने यहाँ आत्मा को, आत्मारूप ही, अर्थात् अध्यात्मरूप से ही जाना,.... आहाहा! अन्तर के स्वसंवेदन से आत्मा को जाना। **शारीरिक या कर्मोपादित....** शरीर आदि या कर्म से उपादित-प्राप्त हुए **सुर-नर-नारक-तिर्यंचादि जीव पर्यायादिरूप नहीं जाना....** यह जीव की पर्याय है, ऐसा नहीं जाना। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी जीव की पर्यायरूप जीव को नहीं जाना। आहाहा! वह तो पर है। छह काय में नहीं आता, प्रवचनसार में ? छह काय के जीव। छह काय के जीव, वह जीव नहीं। जीव का स्वरूप तो छह काय के शरीर से भिन्न है। आता है न ? प्रवचनसार में आता है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया। नहीं, नहीं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय जीव का स्वरूप है ?

मुमुक्षु : वह तो पुद्गल की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पुद्गल की पर्याय है। वहाँ ज्ञान की अल्प ज्ञान की अवस्था है। वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं है। वास्तविक जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं कि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय शरीरादि और सुर-नर आदि गति, ऐसी पर्यायरूप जीव को नहीं जाना। आहाहा! **तथा (जिन्होंने) अन्य को, अर्थात् शरीरादिक व कर्मजनित....** यह कर्म उपादित कहा वह। **मनुष्यादिक जीव पर्यायादि को पररूप से,....** आहाहा! यह मनुष्य की गति, रागादि हो उसे जिन्होंने पररूप जाना। आहाहा! वह मैं नहीं। मैं उसमें नहीं, वह मुझमें नहीं। ऐसा जो प्रथम मोक्ष के उपायरूप भेदज्ञान सिद्ध ने किया और वही करने का जगत को कहते हैं। आहाहा!

आत्मा से भिन्नरूप ही जाना। गति, राग, पर्याप्ति, अपर्याप्ति आदि, वह तो पररूप

है। मेरा स्वरूप तो ज्ञानघन है, चैतन्यबिम्ब है। उस स्वरूप को स्व-रूप से जाना और पर को पर-रूप जाना। आहाहा! देखो! इसका नाम भेदज्ञान है।

कैसे उन्हें नमस्कार किया ? वे सिद्ध भगवान कैसे हैं कि जिन्हें नमस्कार किया? **अक्षय-अनन्त बोधवाले....** पाठ में यह है न? अक्षय अनन्त ज्ञान। अक्षय अनन्त ज्ञान। अक्षय अनन्त बोध। ऐसे तीन शब्द हैं न? आहाहा! कैसा है उनका ज्ञान? अक्षय। **अर्थात् अविनश्वर....** ज्ञान। लो! यह तो केवलज्ञान की पर्याय ऐसे तो नाशवान है, परन्तु वैसी की वैसी रहते हुए, उसमें अपूर्णता न आकर वह अविनश्वर दशा कूटस्थ हो गयी। आहाहा! अक्षय अनन्त ज्ञान जिसकी दशा में प्राप्त हुआ, ऐसे सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ। उन्हें ऐसी लक्ष्मी मिली। अनन्त अक्षय ज्ञान। क्षय न हो ऐसा और अनन्त।

एक ओर नियमसार में कहते हैं कि केवलज्ञान और मोक्ष का मार्ग तथा पुण्य-पाप के भाव ये सभी पर्यायें नाशवान हैं। अविनाशी कायम टिकनेवाला तो भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु है। उस अविनाशी त्रिकाल सत्य की अपेक्षा से उन्हें नाशवान कहा। और यहाँ अक्षय अनन्त कहा, ऐसी की ऐसी दशा, ऐसी की ऐसी रहेगी सादि-अनन्त। आहाहा! चैतन्यसूर्य जलहल ज्योति से प्रकाशित हुआ, मोक्ष के उपाय द्वारा। समझ में आया?

अब यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का उपाय अलग चीज़ है और मोक्ष की पर्याय अलग चीज़ है। इस उपाय द्वारा करके पर्याय प्रगट करे, ऐसा नहीं। वह दूसरी अपेक्षा। आहाहा! वह तो स्वतन्त्र केवलज्ञान की दशा स्वयं के कारण से वहाँ उत्पन्न हुई। परन्तु पूर्व में क्या था? यह बतलाने के लिये उसे उपाय और कारण कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! इतनी अपेक्षाएँ न समझे तो उसे एकान्त हो जाये। वह केवलज्ञान अक्षय बोधवाले को.... आहाहा!

अक्षय, अर्थात् अविनश्वर और अनन्तर, अर्थात् देशकाल से अनविछिन्न.... देश काल का कोई पार नहीं। सब देश काल का पार आ गया। आहाहा! देश अर्थात् लोकालोक क्षेत्र और काल—त्रिकाल, जिसकी ज्ञानपर्याय में ज्ञात हो गया है। ओहोहो! ऐसी सिद्ध की दशा, इस मोक्ष के उपाय से मोक्ष हुआ है। समझ में आया? इसमें ऐसा

नहीं कहा कि भाई! व्यवहार मोक्षमार्ग जो है, उससे यह मोक्ष हुआ। यहाँ तो व्यवहार को तो अशुद्धता में जाना, पररूप जाना। और स्व की शुद्धता को अपनी परिपूर्णता को शुद्धता (रूप से) जाना। आहाहा! समझ में आया? यह तो ऐसा धीर का मार्ग है, भाई!

व्यापार में तो ऐसा मानो पागल होकर लवलीन होता है न, देखो न! नहीं कहा था एक बार? तब वह क्या कहलाता है? कोलाबा। कोलाबा-कोलाबा। पहले गये न जब माल लेने दुकान से। कहा, चलो कोलाबा देखने जायें। तब (संवत्) १९६४ का वर्ष होगा। ६४-६५। संवत् ६४-६५। मुम्बई। कोलाबा देखने गये वहाँ। तार वहाँ आवे वे तार वहाँ थे न, क्या कहा जाता है उसे? अमेरिका से तार वहाँ आवे। तार वहाँ आता था। मैंने देखा। एक मारवाड़ी था ऐसे ...बन्ध, ढीचकुं शरीर। लिया-दिया... यह तो देखो तुम्हारे पागल। कहा, यह क्या है?

मुमुक्षु : साहेब! वह करोड़ों रुपये कमाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं कमाता। ऐई! कोलाबा मुम्बई में समुद्र के किनारे है न! वहाँ से तार-समाचार आते थे। आवे और फिर यह लिया, इस भाव दिया, इतना दिया, इतना लिया। पागल है, तब ऐसा लगता था, हों! क्या करता है यह? आहाहा!

यह तो धीर का काम है। जिसने अपने स्वरूप को जानकर अपना स्वरूप पूर्ण लिया.... आहाहा! और अशुद्धता को जानकर अशुद्धता का नाश किया। ऐसा जो मोक्ष का उपाय, उससे अविनश्वर अनन्त ज्ञान की दशा को प्राप्त हुए हैं। आहाहा!

समस्त पदार्थों के परिच्छेदक,.... परि अर्थात् समस्त प्रकार से उसके जाननेवाले। परि-समस्त प्रकार से छेदक। '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' आता है न? '**च्छिदे**' वहाँ आता है '**सर्वभावान्तर**'। **ज्ञानवाले; उनको (नमस्कार)....** ओहोहो! जिन्हें अक्षय अनन्त पर्याय में ज्ञान प्रगट हुआ, ऐसे अस्तित्व को मेरा नमस्कार! समझ में आया? उन्हें नमस्कार। **इस प्रकार के ज्ञान, अनन्त दर्शन, सुख, वीर्य के साथ....** इस प्रकार का जो ज्ञान-अक्षय ज्ञान एक समय की दशा में परमात्मा का मोक्षदशा में हो गया। आहाहा! उस ज्ञान का अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य के साथ **अविनाभावीपने की सामर्थ्य के कारण,....** आहा! वे साथ में होते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और

अनन्त वीर्य—पुरुषार्थ, वे एक समय में साथ में होते हैं। इसलिए **वे अनन्त चतुष्टयरूप हैं — ऐसा बोध होता है।** आहाहा!

सिद्ध परमात्मा। यह तो णमो सिद्धाणं.... णमो सिद्धाणं करे, परन्तु क्या सिद्ध? क्या पर्याय? सिद्ध भी एक पर्याय है, कोई गुण-द्रव्य नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। सिद्ध भगवान की भी एक दशा है, वह पर्याय है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसकी पर्याय का परिमितपना-मर्यादितपना नहीं। अनन्त-अनन्त ज्ञान जिन्हें प्रगट हुआ है। उसके साथ अनन्त दर्शन, वीर्य और आनन्द प्रगट हुआ है। ऐसा उनका अनन्त चतुष्टय स्वरूप है। दूसरे अनन्त साथ में हैं। मुख्य यह चार (कहे)। ऐसे **सामर्थ्य के कारण, वे अनन्त चतुष्टयरूप हैं — ऐसा बोध होता है।** ऐसा ज्ञान में ज्ञात होता है। अनन्त ज्ञान के साथ एक समय में अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य होता है, ऐसा बोध होता है—ऐसा ज्ञान में ज्ञात होता है, कहते हैं।

शंका - इष्टदेवता विशेष, पञ्च परमेष्ठी होने पर भी,.... इष्टदेव तो पाँच परमेश्वर हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। **यहाँ ग्रन्थकर्ता ने सिद्धात्मा को ही क्यों नमस्कार किया?** पंच परमेष्ठी को नमस्कार न करके सिद्ध परमात्मा को क्यों नमस्कार किया?

समाधान - ग्रन्थकर्ता, व्याख्याता,.... इसकी व्याख्या करनेवाले, इसे सुननेवाले **श्रोता और....** इसके अर्थ के अनुष्ठान को जाननेवाले। अर्थ—जो वस्तु कहते हैं, उसका भाव-अर्थ, उसके अनुष्ठाता-आत्मा। विशेष दशा को जाननेवाले। ऐसे **अनुष्ठाताओं को सिद्धस्वरूप की प्राप्ति का प्रयोजन होने से,...** इन चारों को। ग्रन्थकर्ता को, ग्रन्थकर्ता के व्याख्याता को, उसके सुननेवाले को और उसके अर्थ को समझनेवाले को। सबको **सिद्धस्वरूप की प्राप्ति का प्रयोजन होने से,....** सिद्धपना प्राप्त करना, यही उनकी अभिलाषा है। आहाहा! समझ में आया? श्रोता भी ऐसा होना चाहिए, कहते हैं कि जिसे परमात्मपद प्राप्ति का ही एक काम है। समझ में आया? व्याख्याता को भी यह प्रयोजन है, ग्रन्थकर्ता को भी यह प्रयोजन है और उसके अर्थ के विशेषरूप से जाननेवाले, उन्हें भी प्रयोजन तो यह है। आहाहा! यह कहेंगे, दृष्टान्त देंगे। पण्डित....

जो जिसकी प्राप्ति का अर्थी होता है,... क्यों नमस्कार किया उन्हें, कहते हैं ? **जो जिसकी प्राप्ति का अर्थी होता है,...** जिसे जो चाहिए हो, **वह उसे नमस्कार करता है;....** उसमें वह नमन और झुकाव करता है। **जैसे, धनुर्विद्या प्राप्ति का अर्थी,....** धुनर्विद्या होती है न यह ? **धनुर्वेदी को नमस्कार करता है, वैसे ही।** सिद्ध के अनुष्ठान के, सिद्ध की भावना के अभिलाषी उन सिद्ध को नमस्कार करते हैं। आहाहा! समझ में आया ? **इस कारण सिद्धस्वरूप की प्राप्ति के अर्थी,....** यह आता है न ? 'काम एक मोक्ष...' क्या आता है ? 'काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मन रोग।' एक आत्मार्थ प्रयोजन, मोक्ष का जिसे प्रयोजन है। ऐसे जीव **समाधिशतक शास्त्र के कर्ता, व्याख्याता, श्रोता और उसके अर्थ के अनुष्ठाता आत्मा विशेष — (ये सभी) सिद्धात्मा को नमस्कार करते हैं।** आहाहा!

तीर्थंकर भी जब दीक्षा अंगीकार करते हैं न, (तब) णमो सिद्धाणं (बोलते हैं)। पंच परमेष्ठी को नहीं करते। तीन ज्ञान सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण की स्थिरता है। णमो सिद्धाणं। बस इतना। तीर्थंकर भगवान जब चारित्र-अन्दर के आनन्द की दशा, वह चारित्र, हों! यह सब अभी जो कहते हैं कि यह व्रत और तप और यह सब व्रत भी नहीं और चारित्र भी नहीं। अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना ? बापू! इस चीज़ की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

एक-एक द्रव्य की एक-एक समय की पर्याय स्वयं से होती है, पर से नहीं होती। पर से नहीं होती परन्तु उसके पूर्व की अवस्था के व्यय से नहीं होती। आहाहा! और वह-वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, धर्म की पहली (शुरुआत) ध्रुव के कारण नहीं होती। आहाहा! उसे ऐसा मानना कि जो यह राग करते हैं और यह क्रिया करते हैं, उससे होती है। दृष्टि एकदम विपरीत मिथ्यात्व है। कहो, महेन्द्रभाई! सेठिया वह बाहर स्वयं त्याग कर सके नहीं तो दूसरे का त्याग ऐसा देखे तो जय महाराज.... जय महाराज... !

मुमुक्षु : नग्न तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्न (हो) तो क्या हुआ ? अभी कहीं आया था। नग्न तो क्या हुआ ? वह शब्दकोश में आया था। जिसे सम्यग्दर्शन का भान नहीं, वे सब नग्नो...

आहाहा! ...इसमें शब्द स्पष्ट डाला भाई ने। और दूसरे में कुछ डाला। दूसरे में। अष्टपाहुड़ में तो है, दूसरे में कहीं है। ऐसा नग्नपना क्या और उसके पंच महाव्रत के परिणाम भी क्या? आहाहा! जिसे (स्वयं) के लिये आहार बना हुआ ले, चौका करके ले, खबर है कि यह मेरे लिये बने हुए हैं। वहाँ व्यवहार का व्रत भी कहाँ है? नवनीतभाई! ऐई! स्वरूपचन्दभाई! तुम तो श्वेताम्बर थे। महेन्द्रभाई दिगम्बर। नहीं?

मुमुक्षु : .... दिगम्बर, यह श्वेताम्बर।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ न। तुम श्वेताम्बर थे न। आहाहा! मुनिमार्ग बापू! ऐसा सूक्ष्म है। ....सूक्ष्म बात है। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप आनन्द का नाथ अपने अनुभव में (आया), जिसे राग की और निमित्त की भी अपेक्षा नहीं, जिसे भगवान देव, गुरु और शास्त्र की अपेक्षा नहीं। ऐसी जो अन्तर की दशा सम्यग्दर्शन-निर्विकल्प प्रतीति और निर्विकल्प प्रतीति में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का वेदन साथ में (आवे).... आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन बिना व्रत, तप और चारित्र सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया? आहाहा! किसी व्यक्ति के स्वरूप के लिये (नहीं), वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! भाई! जिसमें चारित्र अर्थात् चरना। चरना अर्थात् स्थिर होना। जिस चीज़ में स्थिर होना है, उस चीज़ का ही जहाँ अनुभव नहीं। समझे? तो स्थिर होना आवे कहाँ से उसमें? राग की क्रिया है अकेली। आहाहा! और वह भी एक ही सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ मार्ग एक। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग है नहीं।

दूसरे का समन्वय करते हैं न? सबको अभी समान मानो। किसी के साथ विरोध नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं, वैर नहीं, तिरस्कार नहीं, द्वेष नहीं। परन्तु वस्तु का स्वरूप हो वैसा तो जानना चाहिए न! महेन्द्रभाई! आहाहा! सब भगवान आत्मा है। तत्वैषु मैत्री। तत्त्व जीव रूप से तो मैत्री होती है। परन्तु उसकी पर्याय में भूल जो है, उसे तो बड़ी जैसी है, वैसी जाननी चाहिए। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रथम जहाँ दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह तो शुभराग

मैं करूँ और वह करनेयोग्य है। शास्त्र चरणानुयोग में ऐसा आवे। व्यवहारनय के ग्रन्थ में उसे पालता है, अतिचार टालता है, उस निर्मल व्रत को... ऐसा आता है। परन्तु इसका परमार्थ (क्या) ? वस्तु के स्वरूप में स्थिर होने पर, पूर्ण स्थिर नहीं हो सका, इसलिए ऐसे विकल्प आते हैं। वे आवें, उन्हें करे, ऐस भी नहीं। आहाहा! वह करे और उससे आत्मा का कल्याण होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु की अभी सम्यग्दृष्टि....

यहाँ कहा न पहले ? पर से भेदज्ञान ही जहाँ पहले नहीं, वहाँ स्थिर किसमें हो ? और हटे किसमें से ? समझ में आया ? रागादि की क्रिया से हटना है, हटना है और स्वभाव में स्थिर होना है। पर से खस, स्व में बस, यह टूंकुं टच। आहाहा! इस व्रत की क्रिया में से भी हट। यह राग है, आस्रव है, भाई! यह चारित्र नहीं, यह व्रत नहीं, यह संवर नहीं। आहाहा! ऐसे राग को पररूप जानकर, मुझे लाभदायक नहीं। आहाहा! मुझे लाभदायक तो स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता, वही मुझे लाभदायक है। भगवान तीन लोक के नाथ को मैं मानूँ—ऐसा जो विकल्प, वह भी आत्मा को लाभदायक नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहा कि धर्म की प्राप्ति, स्वरूप की दृष्टि.... आहाहा! उसे लाभ के लिये पूर्व की मिथ्यात्वदशा का व्यय, वह भी इस लाभ के लिये मददगार नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा जो उसका स्वरूप ही, उसकी जाति में, ऐसी जाति ही उसकी है। वह कहीं भगवान ने किया नहीं ऐसा बन्धारण कि ऐसा तुमने किया, आओ यह मैं उसका कर्ता हूँ। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! यह भाषा की दशा होती है, वह भी आत्मा से नहीं होती।

एक व्यक्ति ने कहा था। यहाँ सुनने आया था। अहमदाबाद का श्वेताम्बर था। बाद में आया नहीं। यहाँ आया था, पन्द्रह दिन रहा था। .... सुना। वहाँ जाकर कहे कि महाराज! यह बोलता कौन है ? यहाँ का सुना हुआ सही न ? कि बोले वह आत्मा नहीं। बोले वह जड़ की भाषा। आहाहा! वहाँ सामने जवाब दिया, महाराज! यह बोलता कौन है ? कि तेरा बाप बोलता है ? कौन बोलता है ? तू बोलता है। ऐ.... स्वरूपचन्दभाई! अरे! भगवान! यह तेरा बाप बोलता है ? कौन बोलता है ? तू बोलता नहीं ? वह तो

बेचारा यहाँ से सुनकर गया हुआ। बहुत वर्ष की बात है, हों! २०-२५ वर्ष हो गये। दो व्यक्ति आये थे। श्वेताम्बर दो आये थे। आहाहा!

अरे रे! ऐसी भाषा आवे, वह सुनना तुझे रुचे नहीं? और हम बोलते हैं और हम भाषा करते हैं। अरे रे! यह तो मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टिपने की यह तो दशा है। आहाहा! उसे यहाँ कहते हैं कि जिसे सिद्धपने की जिज्ञासा है, जिसकी जिसे रुचि, उसका उसे नमस्कार होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सिद्धपद की प्राप्ति जो मेरी पूर्ण दशा, जो मेरी पूर्ण पदवी, जो मेरी पर्याय की पूर्ण स्थिति वह है। ऐसी दशा का जिज्ञासु, ऐसी दशा के प्राप्त को नमस्कार करता है। समझ में आया? आहाहा! **(ये सभी) सिद्धात्मा को नमस्कार करते हैं।**

सिद्ध शब्द से यहाँ अर्हंतादि का भी ग्रहण समझना... यह एकदेश अरिहन्त और वे सब सिद्ध ही हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु। आदि शब्द है न? **अर्हंतादि का भी ग्रहण समझना, क्योंकि उन्होंने भी देशतः (आंशिक) सिद्धस्वरूप प्राप्त किया है।** आहाहा! आचार्य, उपाध्याय, साधु और अरिहन्त उन्होंने भी.... अरिहन्त को भी अभी पूर्ण सिद्धदशा हुई नहीं। अभी उन्हें असिद्धभाव खड़ा है। चार अघातिकर्म का भाव है, तो एकदेश सिद्ध हुए हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **अर्हंतादि का भी ग्रहण समझना, क्योंकि उन्होंने भी देशतः (आंशिक) सिद्धस्वरूप प्राप्त किया है।** आहाहा! इसी प्रकार आचार्य, उपाध्याय, साधु वीतरागपने की दशा से उत्पन्न हुए हैं, वे सब एकदेश, एक भाग शुद्ध ही हैं। समझ में आया? यह सिद्ध को नमस्कार करते हुए उसमें पाँचों आ जाते हैं।

भावार्थ - ग्रन्थकार ने श्लोक के पूर्वार्ध में स्व-पर का भेदविज्ञान... है न? कहा न पहले, स्व-पर का भेदज्ञान **ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है—ऐसा सूचित किया है... 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।'** अभी तक जो कोई मोक्ष को प्राप्त हुए, वे सब दया, दान, व्रत, भक्ति के राग से भिन्न करके, अपने स्वरूप में स्थिर होकर भेदज्ञान करके प्राप्त हुए हैं। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव वह तो राग अशुद्ध है। आहाहा! उस मलिनभाव से सिद्धपद प्राप्त हुए हैं, ऐसा नहीं है।

उससे तो भिन्न करके अपने शुद्ध स्वभाव की निर्मलदशा प्रगट करके, पवित्रता प्रगट करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। समझ में आया?

भावार्थ - ग्रन्थकार ने श्लोक के पूर्वार्ध में स्व-पर का भेदविज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है—ऐसा सूचित किया है और उत्तरार्ध में.... दूसरे दो पद में। **फलस्वरूप परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप ऐसी सिद्धदशा....** यह सब पहले डाल गये हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य। **परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप ऐसी सिद्धदशा ही मोक्षस्वरूप है—ऐसा दर्शाया है,....** इस भेदज्ञान से प्राप्त होती दशा, वह मोक्षस्वरूप है, वह उसका फल है। वह उपेय है। सिद्धदशा, वह उपेय है और भेदज्ञान, वह उपाय है। उपाय और उपेय, आता है न? समयसार में पीछे आता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा में जो मोक्षदशा की जिज्ञासावाले, उन्होंने जो उपाय कहा, वह शुद्ध किया। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि के भाव भी अशुद्ध है। आहाहा! राग है। उससे भिन्न करके मोक्ष का उपाय किया। उसके आदरकर-रहकर मोक्ष का उपाय किया, ऐसा नहीं। आहाहा! पहले ही अभी दिक्कत। जरा राग की मन्दता—शुभभाव करे तो इतनी तो शान्ति तो आवे! ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! यह शुभराग स्वयं ही अशान्ति है। भगवान का स्मरण करना, भक्ति और पूजा और यात्रा का भाव स्वयं ही अशान्ति है। उसे खबर कहाँ है। आहाहा! आता है, पूर्ण वीतराग न हो, उसे यह आता है, परन्तु आवे वह हेय है। साधकपने में मददगार वह नहीं है। आहाहा! अरे! कहाँ इस बात को....

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्राप्ति, उसे देव-गुरु की अपेक्षा नहीं और देव-गुरु की श्रद्धा का विकल्प भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने को कारण नहीं। आहाहा! अरे! वह तो नहीं, परन्तु मिथ्यात्व का व्यय, वह है; इसलिए सम्यक् पर्याय उत्पन्न हुई—ऐसा भी नहीं है। आहाहा! और वह सम्यक् पर्याय उत्पन्न हुई, भेदज्ञान की दशा, वह वस्तु ध्रुव है, त्रिकाल ध्रुव है, इसलिए वह पर्याय ध्रुव के आश्रय से हुई, ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहा!

'**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (समयसार) ११वीं गाथा में आया न? भूतार्थ के आश्रय

से समकित (होता है)। आहाहा! वह भी व्यवहार है। समकित की पर्याय समकित की पर्याय से होती है, वह ध्रुव से भी है नहीं। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग! ऐसी वस्तु की स्थिति है, ऐसी वस्तु की मर्यादा है। समझ में आया? वह मर्यादा ज्ञान में आवे नहीं और उसे धर्म हो जाये.... आहाहा! ऐसे तो पंच महाव्र पालन किये, पंच समिति और गुप्ति और जैन का दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, मुनिव्रत धार....' मुनिव्रत सच्चा, हों! व्यवहार से। पंच महाव्रत, पंच समिति, गुप्ति, अचेल—नग्नदशा, निर्दोष आहार-पानी लेने की वृत्ति, उसके लिये बनाया हुआ (आहार) प्राण जाये तो भी न ले। ऐसा 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' ऐसी मुनिपने की क्रिया से स्वर्ग में गया—अन्तिम ग्रैवेयक में (गया)। 'पै (निज) आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु भगवान आत्मा के स्पर्श बिना.... आहाहा! चिदानन्दस्वरूप का स्पर्श नहीं, वेदन नहीं। तो कहते हैं कि यह पंच महाव्रत के परिणाम और मुनि व्रत, वह सब दुःखरूप था। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वह सुख नहीं था; वह तो दुःख था। आहाहा! गजब बात है।

यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं कि जितना त्याग करो उतना धर्म। परन्तु किसका? मिथ्यात्व का या पर का? पर का तो ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! पर को मैं छोड़ता हूँ और यह मैं शुभराग को अंगीकार करता हूँ। यह वस्तु में कहा है? आहाहा! ऐसी चीज़ की अन्तर्दृष्टि होनेवाले को, कहते हैं, यह मोक्षस्वरूप बताया उसे। अन्तर्दृष्टि का स्वरूप बताया और उसके फलरूप से मोक्ष बताया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)